શંકંર

શંકંરાચાર્યં કેશવં બાદરાયણમ્ ।
સૂત્રભાષ્યકૃતૌ વન્દે ભગવન્તૌ પુનઃ પુનઃ ॥

ૐ નમો બ્રહ્માદિભ્યો બ્રહ્મવિદ્યા સંપ્રદાય કર્તૃભ્યો
નમો ઋષિભ્યો ॐ ગુરુભ્યો નમઃ ॥

श्रीभगवत्पादशङ्कराचार्यविरचित Kartribhyo

Brahma

तत्त्वबोध

एवं

आत्मबोध

भाषानुवादक एवं व्याख्याकार-

आचार्य महामण्डलेश्वर श्रीमत्स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती जी महाराज

सम्पादक

आचार्य स्वामी विजयानन्द पुरी जी

प्रकाशक :
कैलास विद्या प्रकाशन
श्री कैलास आश्रम, मुनि की रेती,
ऋषिकेश (टिहरी) 249137

प्रथमावृत्ति १०००
कार्तिक
वि०सम्वत् २०७०

पुस्तक प्राप्ति स्थान-

-श्री कैलास आश्रम, मुनि की रेती (टि.ग.) ऋषिकेश-249137
-श्री दशनाम संन्यास आश्रम, भूपतवाला हरिद्वार-249401
-श्री कैलास आश्रम, उजेली, उत्तरकाशी-249193
-श्री रामआश्रम, सामानामण्डी, पटियाला-147101
-कैलास धाम, नई झूसी, प्रयागराज-221506
-श्री कैलास आश्रम, सुभाषनगर, माडल टाउन, रोहतक-124001
-शङ्कर ब्रह्मविद्या कुटीर, 83-ए द्वारकापुरी, मुजफ्फरनगर-251001
-कैलास विद्यातीर्थ, गिरियक मार्ग, राजगिर (नालन्दा) - 803116
-कैलास विद्यातीर्थ, 6, भाई वीर सिंह मार्ग, नई दिल्ली-110001
-कैलास विद्याधाम, रूपनगर (चिनोर), जम्मू तवी- 180001

मुद्रक : सेमवाल प्रिन्टिंग प्रेस, ऋषिकेश-249201

સમરીતિ મંદાતેજા: ધ્રુવાક્ષ્મ ઢનાતન:
જયતાડ્જ્ઞાનજીનાશ્યો વેદવેદ્યો
મહાગતિ:||

ॐ

।। श्रीमदभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतराम् ।।

श्रीशङ्करभगवत्पादाचार्यप्रणीतः

तत्त्वबोधः

(पूर्वार्धम्)

भाषानुवादक एवं व्याख्याकार-

आचार्य महामण्डलेश्वर श्रीमत्स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती जी महाराज

सम्पादक

आचार्य स्वामी विजयानन्द पुरी जी



वासुदेवेन्द्रयोगीन्द्रं नत्वा ज्ञानप्रदं गुरुम्।
मुमुक्षूणां हितार्थाय तत्त्वबोधोऽभिधीयते।।

वासुदेव रूप परमात्मा से अभिन्न ज्ञानप्रद गुरुदेव श्री गोविन्द योगीन्द्र भगवत्पाद को प्रणाम कर मुमुक्षुओं के हित मोक्षसाधन ज्ञान प्राप्ति के लिये तत्त्वबोध का उपदेश किया जाता है। तत्त्वज्ञान-प्रतिपादक होने से ग्रन्थ का नाम तत्त्वबोध है।

जगद्गुरु श्री शङ्करभगवत्पाद ने वैदिक सिद्धान्त के

स्पष्टीकरण के लिये प्रस्थानत्रयी (श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र) के भाष्य की रचना की। गम्भीर भाष्यार्थ का सम्यग् बोध तथा वेदान्त राजमार्ग पर निःसंदिग्ध अग्रसर होने के लिये सभी (उत्तम, मध्यम, व अधम) साधकों के लिये अनेक प्रकरण ग्रन्थों का उपदेश किया। यह प्रस्तुत तत्त्वबोध नामक प्रकरण ग्रन्थ अतिसंक्षिप्त है। किन्तु यह सारे प्रकरण ग्रन्थों का सारगर्भ होने से मुमुक्षुओ का अत्यन्त उपकारक है। जिज्ञासु साधक इस ग्रन्थ को कण्ठस्थ कर अर्थ के साथ हमेशा हृदय में धारण करें।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण, स्मृति शिष्टाचार प्रमाणसिद्ध है। इसका पालन करते हुए तथा शिष्यों को शिक्षा प्रदान करने के लिये और ग्रन्थ श्रवण करने वालों को निर्विघ्न बोध उत्पादन के लिये आचार्य पाद ने प्रारम्भ में मङ्गलाचरण किया। इसके द्वारा ईश्वर और गुरुदेव की कृपा से ज्ञान-प्राप्ति होती है, यह अर्थ से सूचित किया। 'वासुदेवेन्द्र' पद से ईश्वर और गुरु का अभेद भी बताया। मुमुक्षुओं का हितकर मोक्षसाधन ज्ञान ही है। इससे ग्रन्थ का प्रयोजन, तत्त्वबोध के द्वारा मोक्ष-प्राप्ति यह भी सूचित हुआ और ग्रन्थ का अधिकारी मुमुक्षु है, यह भी कथन हुआ। ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय जीव-ब्रह्म की एकता, जिसका ज्ञान मोक्षसाधन है यह भी सूचित हुआ।

आचार्यपाद के गुरुजी थे गोविन्दयोगीन्द्रपाद। उनका पर्यायवाचक 'वासुदेवेन्द्र' नाम लेकर ईश्वर और गुरुदेव का अभेद परामर्श करके प्रणाम किया।

जो सर्वत्र रहते हैं और सबका अधिष्ठान हो, वह परमात्मा ही वासुदेव है। विष्णुपुराण में कहा गया है:-

''सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः।
ततोऽसौ वासुदेवेति विद्वद्भिः परिगीयते।।''

'वस निवासे' धातु से बाहुलकाद् उण् प्रत्यय करने से वासु शब्द निष्पन्न होता है। वसति, वासयति सर्वमिति वासुः। वासु ही देव परमात्मा ।।१।।

अब मङ्गलाचरण से सूचित अनुबन्धों का कथन करते हैं-

साधनचतुष्टयसम्पन्नाधिकारिणां मोक्षसाधनाङ्गभूतं तत्त्वविवेकप्रकारं वक्ष्यामः।।२।।

साधनचतुष्टयसम्पन्न अधिकारियों के लिए मोक्ष के साधन ज्ञान के अङ्गस्वरूप तत्त्वविवेक प्रकार को हम कहेगें ।।२।।

साधनचतुष्टयं किम्? नित्यानित्यवस्तुविवेकः, इहामुत्रार्थफलभोगविरागः, शमादिषट्कसम्पत्तिः, मुमुक्षुत्वं चेति।।३।।

साधनचतुष्टय क्या है? नित्यानित्यवस्तुविवेक, इस लोक और परलोक के समस्त भोग्य पदार्थ तथा सुखभोग के प्रति वैराग्य, शमदमादि षट्सम्पत्ति तथा मुमुक्षुता, यही चार साधन हैं जिनसे साधक वेदान्त--श्रवण का अधिकारी होता है ।।३।।

नित्यानित्यवस्तुविवेकः कः? नित्यं वस्त्वेकं ब्रह्म, तद्व्यतिरिक्तं सर्वमनित्यमयमेव नित्यानित्यवस्तुविवेकः।

नित्यानित्यवस्तुतविवेक क्या है? एक ब्रह्म नित्य वस्तु है, उससे भिन्न सम्पूर्ण विश्व अनित्य है, यही नित्यानित्यवस्तुविवेक है ।।४।।

इहामुत्रार्थफलभोगविरागः कः? इह स्रक्चन्दन वनितादिषु अमुत्र स्वर्गभोगेष्विच्छाराहित्यमेव।

इहामुत्रार्थफलभोगविराग क्या है? इस लोक में माला,

चन्दन, वनिता आदि समस्त भोग्य पदार्थों में तथा पारलौकिक स्वर्गभोग में इच्छाराहित्य ही वैराग्य है ।।५।।

शमादिषट्कसम्पत्तिः का?

शमो दम उपरतिस्तितिक्षा श्रद्धा समाधानं चेति।

शमादिषट्कसम्पत्ति क्या है? शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान ।।६।।

शमः कः? अन्तरिन्द्रियनिग्रहः।

दमः कः? बाह्येन्द्रियनिग्रहः।

उपरतिः का? प्रपञ्चेभ्य उपरमणम्।

तितिक्षा का? शीतोष्णादिद्वन्द्वसहिष्णुत्वम्।

श्रद्धा का? गुरुवेदान्तवाक्येषु विश्वासः।

समाधानं किम्? चित्तैकाग्रता।।।७।।

शम क्या है? अन्तरिन्द्रिय (मन) का निग्रह शम कहा जाता है। दम क्या है? चक्षुरादि बाह्य इन्द्रियों का निग्रह। उपरति क्या है? प्रपञ्चों से उपराम होना। कुछ विद्वानों का मत है कि अपने आश्रम धर्मों का अनुष्ठान ही उपरति है। तितिक्षा क्या है? शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों की सहनशीलता। श्रद्धा क्या है? गुरु तथा वेदान्त-वाक्यों में दृढ़ विश्वास श्रद्धा है। समाधान क्या है? चित्त की एकाग्रता को समाधान कहते हैं ।।७।।

मुमुक्षुत्वं किम्? मोक्षो मे भूयादिति दृढेच्छा।।८।।

ममुक्षा (मुमुक्षुत्व) क्या है? मुझे मोक्ष प्राप्त हो, ऐसी दृढ़ इच्छा को मुमुक्षा कहते हैं। इच्छा में दृढ़ता का अर्थ है अन्य इच्छाओं का अभाव ।।८।।

एतत्साधनचतुष्टयसम्पन्नास्तत्त्वविवेकस्याधिकारिणो भवन्ति।
तत्त्वविवेक:क:?आत्मा सत्यस्तदन्यत् सर्वं मिथ्येति ज्ञानमेव।।।६।।

उक्त साधनचतुष्टय से युक्त होने से ही तत्त्वविवेक के अधिकारी होते हैं। वह तत्त्वविवेक है क्या ? आत्मा सत्य है और उससे भिन्न सम्पूर्ण विश्व मिथ्या है, इसी ज्ञान को तत्त्वविवेक कहते हैं ।।६।।

आत्मा कः? स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराद्व्यतिरिक्तोऽवस्थात्रयसाक्षी पञ्चकोशातीतः सच्चिदानन्दस्वरूपो यस्तिष्ठति, स आत्मा।।।१०।।

आत्मा क्या है ? स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर से भिन्न, अवस्थात्रय का साक्षी पञ्चकोशातीत जो सत्, चिद्, आनन्द स्वरूप है, वही आत्मा है ।।१०।।

स्थूलशरीरं किम्? पञ्चीकृतपञ्चमहाभूतैः कृतं सत् कर्मजन्यं सुखदुःखभोगायतनमस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमतेऽपक्षीयते, विनश्यतीति षड्भावविकारैर्युक्तं यत्; तत् स्थूलशरीरम्।।।११।।

स्थूलशरीर क्या है? पञ्चीकृतपञ्चमहाभूतों से बना हुआ कर्मजन्य सुख-दुःखादि भोगों के आयतन को स्थूल शरीर कहते हैं। अस्ति (व्यवहार योग्य होना), उत्पन्न होता है, बढ़ता है, रूपान्तर को प्राप्त होता है, घटता है और नष्ट हो जाता है, ऐसे छः विकारों से युक्त स्थूल शरीर है ।।११।।

सूक्ष्मशरीरं किम्? अपञ्चीकृतपञ्चमहाभूतैः कृतं सत्, कर्मजन्यसुखादिभोगसाधनं ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च, कर्मेन्द्रियाणि पञ्च, प्राणादयः पञ्च, मनश्चैकं बुद्धिरेका; एवं सप्तदशाकलाभिः सह तिष्ठति यत्, तत् सूक्ष्मशरीरम्।।।१२।।

सूक्ष्म शरीर क्या है? अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों से बना हुआ कर्मजन्य सुख-दुःखादि भोगों के साधन पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च प्राण, एक मन और एक बुद्धि, ऐसे सत्रह कलाओं के सहित जो रहता है, वह सूक्ष्म शरीर है ।।१२।।

पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि कानि? श्रोत्रं, त्वक्, चक्षुः, रसना, घ्राणमिति पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि। श्रोत्रस्य दिग्देवता, त्वचो वायुः, चक्षुषः सूर्यः, रसनाया वरुणः, घ्राणस्याश्विनाविति ज्ञानेन्द्रियदेवताः। श्रोत्रस्य विषयः शब्दग्रहणम्, त्वचो विषयः स्पर्शग्रहणम्, चक्षुषो विषयो रूपग्रहणम्, रसनाया विषयो रसग्रहणम्, घ्राणस्य विषयो गन्धग्रहणमिति।।१३।।

श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। श्रोत्र का देवता दिशा है, त्वचा का वायु, नेत्र का सूर्य, रसना का वरुण, घ्राण का अश्विनीकुमार, ये ज्ञानेन्द्रियों के देवता हैं। श्रोत्र का विषय शब्दग्रहण, त्वचा का विषय स्पर्शग्रहण, नेत्र का विषय रूपग्रहण, जिह्वा का विषय रसग्रहण तथा नासिका का विषय गन्धग्रहण है। यहाँ इन्द्रियों के कार्य को विषय शब्द से कहा गया है ।।१३।।

कर्मेन्द्रियाणि कानि? वाक्पाणिपादपायूपस्थानीति पञ्चकर्मेन्द्रियाणि। वाचो देवता वह्निः, हस्तयोरिन्द्रः, पादयोर्विष्णुः, पायोर्मृत्युः, उपस्थस्य प्रजापतिरिति पञ्चकर्मेन्द्रियदेवताः। वाचो विषयो भाषणम्, पाण्योर्विषयो वस्तुग्रहणम्, पादयोर्विषयो गमनम्, पायोर्विषयो मलत्यागः, उपस्थस्य विषय आनन्द इति।।१४।।

वाणी, हस्त, पाद, उपस्थ तथा गुदा; यह पाँच कर्मेन्द्रियाँ

हैं। वाणी का देवता अग्नि, हाथ का देवता इन्द्र, पैर का देवता विष्णु, उपस्थ का देवता प्रजापति, गुदा का देवता मृत्यु है। वाणी का विषय भाषण, हाथ का विषय वस्तुग्रहण, पैर का विषय गमन, उपस्थ का विषय आनन्द तथा गुदा का विषय मलत्याग है।।१४।।

कारणशरीरं किम्? अनिर्वाच्यानाद्यविद्यारूपं, शरीरद्वयस्य कारणभूतं सत् स्वस्वरूपाज्ञानं यदस्ति; तत् कारणशरीरम्।।१५।।

कारण शरीर क्या है? अनिर्वचनीय-अनादिअविद्यारूप, दोनों शरीरों का कारण होता हुआ स्वरूप का अज्ञान जो है, वह कारण शरीर हैं। वह अज्ञान अनादि भावरूप और ज्ञाननिवर्त्य है। भावशब्द भी अभाव विलक्षण अर्थवाला है। अतः अज्ञान अभाव विलक्षण है ।।१५।।

अवस्थात्रयं किम्? जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तयस्तिस्रोऽवस्थाः। जाग्रदवस्था का? श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियैः शब्दादिविषयो ज्ञायते इति यत्; तत् जाग्रदवस्था। स्थूलशरीरैतदवस्थाभिमान्यात्मा विश्व इत्युच्यते।।१६।।

तीन अवस्थाएँ क्या है? जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति, यह तीन अवस्थाएँ है। श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा शब्दादि विषय जो जाने जाते हैं, वही जाग्रत् अवस्था है। इस जाग्रत् अवस्था और स्थूलशरीर का अभिमानी आत्मा 'विश्व' कहा जाता है ।।१६।।

स्वप्नावस्था का? जाग्रदवस्थायां यद्दृष्टं यच्छ्रुतं, तज्जनित-वासनया निद्रासमये या प्रपञ्चप्रतीतिः; सा स्वप्नावस्था। सूक्ष्मशरीरस्वप्नावस्थाभिमान्यात्मा तैजस इत्युच्यते।।१७।।

स्वप्न अवस्था क्या है? जाग्रत् अवस्था में जो देखे गये और सुने गये, तज्जनित वासना से निन्द्रा के समय जो प्रपञ्च की प्रतीति होती है, वही स्वप्नावस्था है। सूक्ष्म शरीर और स्वप्नावस्था का अभिमानी आत्मा 'तैजस' कहा जाता है ।।१७।।

सुषुप्त्यवस्था का? अहं किमपि न जानामि सुखेन मया निद्रानुभूयते इति यत्, तत् सुषुप्त्यवस्था । एतदवस्थाकारण-शरीराभिमान्यात्मा प्राज्ञ इत्युच्यते।।१८।।

सुषुप्ति अवस्था क्या है? 'मैं कुछ नहीं जानता हूँ' 'सुखपूर्वक निद्रा का अनुभव मुझे होता है' ऐसा जिसका परामर्श होता है, वही 'सुषुप्ति अवस्था' है। इस सुषुप्ति अवस्था और कारण शरीर के अभिमानी आत्मा को 'प्राज्ञ' कहा जाता है ।।१८।।

पञ्चकोशाः के? अन्नमयः प्राणमयो मनोमयो विज्ञानमय आनन्दमयश्चेति।।१६।।

पञ्च कोश क्या है? अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय, ये पञ्च कोश हैं ।।१६।।

अन्नमयः कः? अन्नरसेनैव भूत्वाऽन्नरसेनैवाभिवृद्धिं सम्प्राप्यान्नरूपपृथिव्यां यद्विलीयते, सोऽन्नमयः कोशः।।२०।।

अन्नमय कोश क्या है? अन्न के रस से ही उत्पन्न होकर अन्नरस से ही वृद्धि को प्राप्त होकर जो अन्नरूप पृथ्वी में विलीन होता है, वह स्थूलशरीर अन्नमय कोश है ।।२०।।

प्राणमयः कः? प्राणादिपञ्चवायवो वागादीन्द्रियपञ्चकं च मिलित्वा प्राणमयः कोशः।।२१।।

प्राणमय कोश क्या है? प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, ये पञ्चप्राण और वागादि पञ्चकर्मेन्द्रियाँ इन को मिलाकर

प्राणमयकोश कहा गया है ।।२१।।

मनोमयः कः? मनश्च ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं च मिलित्वा मनोमयः कोशः।।२२।।

मनोमय कोश क्या है? पञ्चज्ञानेन्द्रियों के सहित संकल्प-विकल्पात्मक मन, मनोमय कोश है ।।२२।।

विज्ञानमयः कः? बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं च मिलित्वा विज्ञानमयः कोशः।।२३।।

विज्ञानमय कोश क्या है? अन्तःकरण की निश्चयात्मिका वृत्तिरूप बुद्धि और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, दोनों मिलकर विज्ञानमय कोश है ।।२३।।

आनन्दमयः कोशः कः? प्रियमोदादिवृत्तिमत् स्वस्वरूपाज्ञानं यदस्ति, तदानन्दमयः कोशः। एतत्कोशपञ्चकं च मदीयं शरीरं, मदीयाः प्राणाः, मदीयं मनो मदीया बुद्धिर्मदीयमज्ञानमिति मदीयत्वेनैव ज्ञायते। तद्यथा मदीयत्वेन ज्ञातं कुण्डलकटकगृहादिकं स्वस्माद्भिन्नं, तथा मदीयत्वेन ज्ञातमात्मा न भवति।।२४।।

आनन्दमय कोश क्या है? कारणशरीर भूत अविद्या में स्थित प्रिय, मोद तथा प्रमोद वृत्ति सहित मलिन सत्त्व को आनन्दमय कोश कहते हैं। ये पाँचों कोश-अन्नमय कोश स्थूल शरीर मेरा है, प्राण मेरे हैं, मन मेरा है, बुद्धि मेरी है और अज्ञान मेरा है, इस प्रकार आत्मीय रूप से जाने जाते हैं। जैसे कटककुण्डल आदि मेरे है, इस प्रकार मुझसे भिन्न हैं। वैसे ही पञ्चकोश मेरे है, इस रूप में जाना जाता है। इसलिए पञ्चकोश भिन्न है और

आत्मा भिन्न है, ऐसा सिद्ध हो जाता है।

यहाँ पर यह युक्ति सूचित है कि जो मेरा है, वह मुझसे भिन्न है। जैसे गृह, पुस्तक आदि मेरे हैं, अतः मुझसे भिन्न है। इस प्रकार आचार्यपाद ने यहाँ एक साथ सरलतम युक्ति के द्वारा सिद्ध कर दिया कि पाँचो कोश आत्मा से भिन्न और अनात्मा है। अब यहाँ शंका होती है कि मेरे माता-पिता, भाई- बन्धु आदि सब जीव है, अतः अनात्मा कैसे? तो इसका उत्तर है कि जैसे स्वप्न में मुझसे भिन्न मित्र-शत्रु, भाई-बन्धु दिखते हैं पर वास्तव में वहाँ कोई जीव नहीं। इसीलिये सिद्ध होता है कि आत्मा नहीं दिखता भिन्न-भिन्न देह ही दिखाई पड़ता है। आत्मा में कोई भेद नहीं है। साथ ही यह भी सूचित है कि जो भी दिखता है, वह सब स्वप्नदेह के समान मिथ्या है ।।२४।।

तर्ह्यात्मा कः? सच्चिदानन्दस्वरूपः ।।२५।।

आत्मा क्या है? आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है।।२५।।

सत् किम्? कालत्रयेऽपि यत्तिष्ठति, तत्सत्। चित् किम्? साधनान्तरनैरपेक्ष्येण स्वयंप्रकाशमानतयेतरपदार्थावभासकं यत्, तच्चित्। आनन्दः कः? सुखस्वरूपः। एवं सच्चिदानन्दस्वरूपं स्वात्मानं विजानीयात्।।।२६।।

सत् क्या है? तीनों काल में जो विद्यमान रहता हो, वह सत् है। चित् क्या है? अन्य साधन के बिना स्वयं प्रकाशमान होता हुआ जो अन्य सब पदार्थों का प्रकाशक हो, वह चित् है। आनन्द क्या है? सुखस्वरूप आनन्द है। इस प्रकार सच्चिदानन्दस्वरूप अपने आत्मा को जानें ।।२६।।

(पूर्वार्ध समाप्तम्)

(उत्तरार्धम्)

अथ चतुर्विंशतितत्त्वोत्पन्तिप्रकारं वक्ष्यामः ।।२७।।

अब २४ तत्त्वों की उत्पत्ति का प्रकार हम कहेगें ।।२७।।

ब्रह्मणस्तमोगुणप्रधानमायोपहितादाकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुर्वायोस्तेजस्तेजस आपोऽद्भयः पृथिवी।।२८।।

तम प्रधान माया से उपहित ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ आकाशभावापन्न ब्रह्म से वायु की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार वायुभावापन्न ब्रह्म से अग्नि, अग्निभावापन्न ब्रह्म से जल और जलभावापन्न ब्रह्म से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार सारे भूत-भौतिक पदार्थों की उत्पत्ति ब्रह्म से सिद्ध होती है ।।२८।।

तेषां पञ्चतत्त्वानां मध्य आकाशस्य सात्त्विकांशाच्छ्रोत्रेन्द्रियं सम्भूतम्। वायोः सात्त्विकांशात् त्वगिन्द्रियं सम्भूतम्। अग्नेः सात्त्विकांशाच्चक्षुरिन्द्रियं सम्भूतम्। जलस्य सात्त्विकांशाद्रसनेन्द्रियं सम्भूतम्। पृथिव्याः सात्त्विकांशात् घ्राणेन्द्रियं सम्भूतम्। एतेषां पञ्चतत्त्वानां समष्टिसात्त्विकांशादन्तःकरणं सम्भूतम्, तच्च वृत्तिभेदान्मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तानीति चतुर्धा।।२६।।

इन पाँच तत्त्वों में से आकाश के सात्त्विक अंश से श्रोत्रेन्द्रिय उत्पन्न हुई। वायु के सात्त्विक अंश से त्वगिन्द्रिय उत्पन्न हुई। अग्नि के सात्त्विक अंश से चक्षुरिन्द्रिय उत्पन्न हुई। जल के सात्त्विक अंश से रसनेन्द्रिय उत्पन्न हुई। पृथ्वी के सात्त्विक अंश से

घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न हुई। इन अपञ्चीकृत पञ्च तत्त्वों के समष्टि सात्त्विकांश से मन, बुद्धि, अहंकार तथा चित्तरूप चतुर्विध अन्तःकरण उत्पन्न हुआ ।।२६।।

संकल्पविकल्पात्मकं मनः निश्चयात्मिका बुद्धिः अहंकर्ता अहंकारः चिन्तनकर्तृ चित्तम्। मनसो देवता चन्द्रमा बुद्धेर्ब्रह्मा अहंकारस्य रुद्रः चित्तस्य वासुदेवः।

संकल्प- विकल्पात्मक वृत्ति का नाम मन; निश्चयात्मिका वृत्ति का नाम बुद्धि, अभिमान करने वाली वृत्ति का नाम अहंकार तथा चिन्तन करने वाली वृत्ति का नाम चित्त है। मन के देवता चन्द्रमा, बुद्धि के देवता ब्रह्मा, अहंकार के देवता रुद्र और चित्त के देवता वासुदेव है।

एतेषां पञ्चतत्त्वानां मध्य आकाशस्य राजसांशाद्वागिन्द्रियं सम्भूतं, वायो राजसांशात् पाणीन्द्रियं सम्भूतं, वह्नेः राजसांशात्पादेन्द्रियं सम्भूतं, जलस्य राजसांशात् उपस्थेन्द्रियं सम्भूतं, पृथिवीराजसांशात्पाय्विन्द्रियं सम्भूतम्।।३०।।

इन पाञ्च तत्त्वों मे से आकाश के रजो अंश से वाक् इन्द्रिय उत्पन्न हुई, वायु के रजो अंश से हस्त इन्द्रिय उत्पन्न हुई, अग्नि के रजो अंश से पाद इन्द्रिय उत्पन्न हुई, जल के रजो अंश से उपस्थ इन्द्रिय उत्पन्न हुई और पृथ्वी के रजो अंश से गुदा इन्द्रिय उत्पन्न हुई ।।३०।।

एतेषां पञ्चतत्त्वानां समष्टिराजसाशांत्
प्राणपञ्चकं सम्भूतम्।।३१।।

इन अपञ्चीकृत पञ्च तत्त्वों के समष्टि रजो अंश से पञ्च प्राण उत्पन्न हुए हैं।।३१।।

एतेषां पञ्चतत्त्वानां तमोगुणप्रधानानां पञ्चीकरणेन पञ्चमहाभूतानि भवन्ति।

इन तमोगुण प्रधान पञ्च तत्त्वों के पञ्चीकरण के द्वारा पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति होती है

पञ्चीकरणं कथम्? एतेषु भूतेष्वेकमेकं भूतं द्विधा समं विभज्यैकमेकमर्द्धं तूष्णीं व्यवस्थाप्यापरमपरमर्द्धं चतुर्द्धा समं विभज्य स्वार्द्धभिन्नेष्वर्द्धेषु स्वभागचतुष्टयसंयोजनं पञ्चीकरणं भवति।

एतेभ्यः पञ्चीकृतपञ्चमहाभूतेभ्यश्चतुर्विधस्थूलशरीरं, ब्रह्माण्डं, ब्रह्माण्डमध्ये चतुर्दशभुवनानि सम्भूतानि।।३२।।

प्रश्न- पञ्चीकरण किस प्रकार होता है ?

उत्तर- एक-एक भूत के दो-दो समान विभाग कर एक-एक अर्धभाग को पृथक् सुरक्षित रखकर दूसरे-दूसरे आधे भाग को चार भागों में विभक्त कर अपने से भिन्न अर्ध भागों में अपने चार भागों को मिलाना पञ्चीकरण होता हैं।

इन्हीं पञ्चीकृत पञ्च-महाभूतों से चतुर्विध स्थूल शरीर (जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज), ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत चतुर्दश भुवन का भेद-प्रभेद उत्पन्न होता हैं। चतुर्दश भुवनों में से भूः, भुवः, स्व, महः, जनः, तपः और सत्य- ये उपर के सात लोक हैं तथा अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल, और पाताल-ये नीचे के सात लोक (भुवन) हैं ।।३२।।

स्थूलशरीराभिमानि जीवनामकं ब्रह्मप्रतिबिम्बं भवति। स एव जीव आत्मन्येव प्रकृत्या जीवेश्वरभेददृष्टिं कल्पयति। कथमिति चेत्? अविद्योपाधिः सन्नात्मा जीव इत्युच्यते।।३३।।

स्थूल शरीर में अभिमान करने वाला ब्रह्मप्रतिबिम्ब जीव नामवाला होता है। वही जीव अविद्या के कारण अपने में ही जीव-ईश्वर भेददृष्टि का आरोप करता है। कैसे? तो इसका उत्तर है- अविद्या उपाधि वाला आत्मा जीव नाम से कहा जाता है।।३३।।

मायोपाधिः सन्नात्मा ईश्वर इत्युच्यते। एवमुपाधिभेदाज्जीवेश्वरभेददृष्टिर्यावत्पर्यन्तं तिष्ठति, तावत्पर्यन्तं जन्ममरणादिरूपसंसारो न निवर्तते। तस्मात् कारणाज्जीव एव ईश्वर ईश्वर एव जीव इतीतराभेददृष्टिं जानीयात् ।।३४।।

माया उपाधि वाले चेतन को ईश्वर कहा गया है। इस प्रकार उपाधिभेद से जीव-ईश्वर में भेददृष्टि जब तक रहती है, जब तक जन्म मरणरूपी संसार निवृत्त नहीं होता। इसीलिए जीव-ईश्वर में 'जीव ही ईश्वर' 'ईश्वर ही जीव' इस प्रकार अभेद दृष्टि करनी चाहिए ।।३४।।

ननु साहङ्कारस्य किञ्चिज्ज्ञस्य जीवस्य निरहङ्कारस्य सर्वज्ञस्येश्वरस्य च कथमभेदबुद्धिः स्यादुभयोर्विरुद्धधर्माक्रान्तत्वादिति चेत्?न। स्थूलसूक्ष्मशरीराभिमानी त्वम्पदवाच्योऽर्थः, उपाधिविनिर्मुक्तं समाधिदशासम्पन्नं शुद्धचैतन्यं च त्वंपदल- क्ष्योऽर्थः । एवं सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ईश्वरस्तत्पदवाच्यः, उपाधिशून्यं शुद्धचैतन्यं च तत्पदलक्ष्यम्। एवं च लक्ष्यार्थमादाय जीवेश्वरयोरभेदे बाधकाभावः।।३५।।

अहंकारयुक्त अल्पज्ञ जीव और अहंकार रहित सर्वज्ञ ईश्वर का तत्त्वमसि इस महावाक्य से अभेदज्ञान कैसे हो सकेगा, क्योंकि ये जीव और ईश्वर दोनों विरुद्ध धर्म से आक्रान्त है?

यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि स्थूल सूक्ष्म शरीर अभिमानी चेतन त्वंपद का वाच्यार्थ है। उपाधि से सर्वथा मुक्त समाधिदशासम्पन्न शुद्ध चैतन्य त्वपंद का लक्ष्यांर्थ है। इसी प्रकार सर्वज्ञत्वादि धर्म से विशिष्ट ईश्वर तत्पद का वाच्यार्थ है और उपाधिशून्य शुद्ध चैतन्य तत्पद का लक्ष्यार्थ है। इस प्रकार चैतन्यरूप लक्ष्यार्थ को लेकर जीव और ईश्वर का अभेद होने से कोई बाधक नहीं है।

लोक में भी मुख्यार्थ को लेने पर यदि विरोध उपस्थित होता है तो लक्षणा की जाती है। लक्षणा का बीज, तात्पर्य की अनूपपत्ति को माना गया है (तात्पर्य का संभव नहीं हो पाना ही तात्पर्य-अनुपपत्ति है।)

लक्षणा ३ प्रकार की होती है, जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा और जहदजहल्लक्षणा (भाग-त्याग लक्षणा)। जिसमें वाच्यार्थ को छोड़कर लक्ष्यार्थ को लिया जाता है, उसे जहल्लक्षणा कहते हैं। जैसे 'गंगायां घोषः' (गंगा में अहीरों की बस्ती) यहाँ गंगा का अर्थ 'प्रवाह' न लेकर लक्ष्यार्थ तीर लिया जाता है। जिसमें वाच्यार्थ को न छोड़ते हुए लक्ष्यार्थ को भी लिया जाता है, उसे अजहल्लक्षणा कहते हैं। जैसे 'छत्रिणो यान्ति' कहने पर छाताधारी पुरुषों के साथ छातारहित पुरुषों का भी ग्रहण किया जाता है। जिसमें विरुद्ध अंशों को छोड़कर अविरुद्ध अंश मात्र का ग्रहण किया जाता है, उसे जहदजहल्लक्षणा या भाग-त्याग लक्षणा कहते हैं। जैसे-

'सोऽयं' देवदत्तः' में विरुद्ध-अंश तद्देश-एतद्देश, तत्काल-एतत्काल आदि को छोड़कर अविरुद्ध अंश व्यक्ति मात्र को लेकर वाक्यार्थ-बोध होता है। इसी प्रकार 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों में भाग-त्याग

लक्षणा से उपाधि और औपाधिक धर्मों को छोड़ने पर शुद्ध-चिन्मात्र का बोध होता है।।३५।।

एवं वेदान्तवाक्यैः सद्गुरूपदेशेन सर्वेष्वपि भूतेषु येषां ब्रह्मबुद्धिरुत्पन्ना ते जीवन्मुक्ता इत्युच्यन्ते।।३६।।

इस प्रकार वेदान्त वाक्यों और सद्गुरू के उपदेश से सभी भूतों में जिनकी ब्रह्म बुद्धि उत्पन्न हो गई है; वे जीवन्मुक्त कहे जाते हैं ।।३६।।

ननु जीवन्मुक्तः कः? यथा देहोऽहं पुरुषोऽहं ब्राह्मणोऽहं क्षत्रियोऽहं वैश्योऽहं शूद्रोऽहमस्मीति दृढनिश्चयस्तथा नाहं ब्राह्मणो न क्षत्रियो न वैश्यो न शूद्रो न पुरुषः, किन्त्वसङ्गः सच्चिदानन्दस्वरूपः स्वप्रकाशरूपः सर्वान्तर्यामी चिदाकाशरूपोऽहमस्मीति दृढनिश्चयरूपापरोक्षज्ञानवान्।३७।।

शङ्का- जीवन्मुक्त कौन है?

समाधान- जैसे में देह हूँ, पुरुष हूँ, ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ, वैश्य हूँ और शूद्र हूँ; ऐसा दृढ़ निश्चय है। ठीक वैसे ही मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं हूँ, पुरुष नहीं हूँ किन्तु असङ्ग सच्चिदानन्दस्वरूप, स्वप्रकाशरूप, सर्वान्तर्यामी, चिदाकाशस्वरूप हूँ; ऐसा दृढ़निश्चयरूप अपरोक्ष ज्ञानी जीवन्मुक्त है ।।३७।।

ब्रह्मैवाहमस्मीत्यपरोक्षज्ञानेन निखिलकर्मबन्धविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तः। कर्माणि कतिविधानि? आगामिसञ्चितप्रारब्धभेदेन त्रिविधानि सन्ति।३८।।

'मैं ब्रह्म ही हूँ' ऐसे अपरोक्षज्ञान द्वारा सम्पूर्ण कर्म बन्धनों से वह ज्ञानी सर्वथा मुक्त हो जाता है। कर्म कितने प्रकार के होते हैं? आगामी, सञ्चित और प्रारब्ध भेद से तीन प्रकार के कर्म होते

हैं ।।३८।।

आगामि कर्म किम्? ज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं ज्ञानिदेहकृतं पुण्यपापरूपं कर्म यदस्ति, तदागामि कर्मेत्यभिधीयते।

आगामी कर्म क्या है? ज्ञान उत्पत्ति के बाद ज्ञानी के शरीरादि से किये गये पुण्य पाप कर्म जो है; उसे आगामी कर्म कहते हैं।।३९।।

सञ्चितं कर्म किम्? अनन्तकोटिजन्मनां बीजभूतं सद्यत् कर्मजातं पूर्वोपार्जितं तिष्ठति, तत् सञ्चितं ज्ञेयम्।।४०।।

सञ्चित कर्म क्या है? अनन्त कोटि जन्मों के बीजभूत होते हुए पूर्व उपार्जित जो कर्म समुदाय है, उसे सञ्चित कर्म समझना चाहिए।।४०।।

प्रारब्धं कर्म किम्? इदं शरीरमुत्पाद्येहलोक एव सुखदुःखादिप्रदं यत्कर्म तत्प्रारब्धं, भोगेन नष्टं भवति। प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षय इति न्यायात्।।४१।।

प्रारब्ध कर्म क्या है? इस शरीर को उत्पन्न कर इस लोक में ही सुख-दुःखादि को देने वाले जो कर्म है; वे प्रारब्ध कर्म है, जो भोग से नष्ट होते हैं। ''प्रारब्ध कर्मों का नाश भोग से ही होता है'' ऐसा शास्त्रवचन है। 'सुखदुःखादि' यहाँ 'आदि' पद से सुख-दुःख साधन का ग्रहण होता है ।।४१।।

सञ्चितं कर्म ब्रह्मैवाहमिति निश्चयात्मकज्ञानेन नश्यति। 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन' इति भगवद्वचनात्। किञ्चागामिकर्मणो नलिनीदलगतजलवत् ज्ञानिनां सम्बन्धो नास्ति।४२।।

'मैं ब्रह्म ही हूँ' ऐसे निश्चयात्मक ज्ञान द्वारा सञ्चित कर्म

नष्ट हो जाते हैं। कमलपत्र पर निर्लिप्त जल की भाँति ज्ञानियों का आगामी कर्म के साथ सम्बन्ध नहीं होता ।।४२।।

किञ्च ये ज्ञानिनं स्तुवन्ति भजन्त्यर्चयन्ति च, तान प्रति ज्ञानिकृतागामिपुण्यं गच्छति । ये च ज्ञानिनं निन्दन्ति द्विषन्ति दुःखप्रदानं कुर्वन्ति, तान्प्रति ज्ञानिकृतं सर्वमागामिक्रियमाणपदवाच्यं कर्म पापात्मकं गच्छति। तथा च श्रुतिः "सुहृदः पुण्यकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्यां गृहणन्तीति"। तथा चात्मवित् संसारं तीर्त्त्वा ब्रह्मानन्दमिहैव प्राप्नोति। "तरति शोकमात्मविदि"त्यादिश्रुतेः।

तनुं त्यजतु वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा।
ज्ञानसम्प्राप्तिसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः।। इति स्मृतेश्च।४३।।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य श्रीशङ्करभगवतः कृतौ तत्त्वबोधः समाप्तः।।

जो ज्ञानी की स्तुति करते हैं, सेवा करते हैं तथा पूजा करते हैं; ज्ञानियों का किया हुआ आगामी पुण्य कर्म उन्हीं के पास चला जाता है और जो ज्ञानी की निन्दा करते हैं, द्वेष करते हैं तथा दुःख देते हैं, उनके प्रति ज्ञानियों का किया हुआ सम्पूर्ण आगामी क्रियमाणपदवाच्य पापरूप कर्म चला जाता है। 'ज्ञानी के पुण्य कर्मों को सुहृद् ग्रहण करते हैं और पाप कर्मों को द्वेषी (द्वेष करने वाले) ग्रहण करते हैं'' ऐसी ही श्रुति है। पुण्य-पाप जाने का अभिप्राय उनको ज्ञानीकृत पुण्य अथवा पापों के अनुरूप फल प्राप्त होता है। तथा आत्मज्ञानी संसार को पार कर यहाँ पर ही ब्रह्मानन्द को प्राप्त

कर लेता है। ''आत्मज्ञानी शोक को पार कर जाता है।'' ऐसी श्रुति है।

''ज्ञानी काशी में शरीर छोड़े अथवा चाण्डाल के घर में शरीर छोड़े, विशुद्ध आशय वाला वह तत्त्ववेत्ता तो ज्ञानसम्प्राप्तिकाल में ही मुक्त हो चुका है।'' ऐसी स्मृति भी हैं। ।।४३।।

।। इति ॐ शम् ।।

इस प्रकार कैलास पीठाधीश्वर आचार्य महामण्डलेश्वर श्रीमत्स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती जी द्वारा विरचित तत्त्वबोध व्याख्या सम्पन्न हुई।।

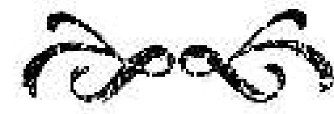
સમશીતિર્નિદાતેજા: ધરણીધર સનાતન:
જાયતાઽજ્ઞાનનીનાશો વેદવેદ્યો
મહાગતિ:||

।। श्रीमदभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतराम्।।

ॐ

श्रीशङ्करभगवत्पादाचार्यविरचितः

आत्मबोधः



जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य भगवान् ने उत्तम अधिकारियों के लिये प्रस्थानत्रयी (प्रस्थान-परमतत्त्व की प्राप्तिका साधन। गीता दशोपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र, ये तीन प्रस्थान हैं।) की रचना करके, उसको जानने में असमर्थ मन्दबुद्धि वालें जिज्ञासुओं पर कृपा करने के लिए सर्व वेदान्त सिद्धान्त रूपी धन संयुक्त 'आत्मबोध' नामक प्रकरण ग्रन्थ की रचना की प्रतिज्ञा ग्रन्थ के आदि में करते हैं-

ॐ तपोभिः क्षीणपापानां शांतानां वीतरागिणाम् ।
मुमुक्षूणामपेक्ष्योऽयमात्मबोधो विधीयते।।१।।

व्याख्या- कृच्छ्रचान्द्रायण, नित्य और नैमित्तिक आदि कर्मों को शास्त्रों में 'तप' शब्द से कहा गया है। ऐसे तप का फलाभिसंधि से रहित होकर अनुष्ठान करने से जिनके पाप (अन्तःकरण के रागादि दोष) क्षीण हो गये हैं। अत एव जो शान्त है तथा जिनसे राग अर्थात् ऐहिक और पारलौकिक भोगों की आकाङ्क्षा निवृत्त हो गयी है, ऐसे संसार रूपी ग्रन्थि -भेदन में तत्पर साधनचतुष्टय संपन्न मुमुक्षुओं के लिए

विधिमुखेन 'आत्मबोध' का प्रतिपादन किया जाता है ।।१।।

शङ्का- जब तप, मन्त्र, कर्मयोग आदि अनेक साधन वर्तमान है तो मोक्ष के लिये प्रधान रूप से बोध को ही क्यों कहा जाता है। इस विषय में कहते हैं-

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम्।
पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं बिना मोक्षो न सिद्ध्यति।।२।।

तप, मन्त्र, कर्मयोगादि साधन ज्ञान के माध्यम से परंपरया मोक्ष की सिद्धि करते हैं। जबकि ज्ञान मोक्ष का साक्षात् साधन है। ज्ञान तो उत्पत्ति मात्र से ही सम्पूर्ण अज्ञान को नाश करके मुमुक्षुओं को स्वाराज्य में अभिषिक्त कर देता है। इसलिए अन्य साधनों की अपेक्षा ज्ञान की प्रधानता कही गयी है। इस बात को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं कि जैसे काष्ठ, जल, पात्र आदि साधन होने पर भी वह्नि के बिना पाकक्रिया नहीं होती। ठीक उसी प्रकार ज्ञान के बिना मोक्ष की सिद्धि नहीं होती। ।।२।।

विलक्षण शक्ति से युक्त होने से कोई कर्म ही अज्ञान को नष्ट कर देगा, अतः आत्मज्ञान से क्या लाभ? ऐसी आशङ्का का निराकरण करते हुए कहते हैं-

अविरोधितया कर्म नाविद्यां विनिवर्तयेत्।
विद्याऽविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिरसङ्घवत्।।३।।

कर्म और अज्ञान में विरोध न होने से अज्ञानात्मक कर्म, अन्तः- करणमलिनता रूपी काम क्रोध के कारण अज्ञान का नाश करने में समर्थ नहीं है। किन्तु ज्ञान प्रकाशस्वरूप होने से अज्ञान का नाश करने में समर्थ हैं। जैसे तेजःपुञ्ज अन्धकार का नाश करता है, ठीक वैसे ही ।।३।।

प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न आत्मा उपलब्ध होता है, फिर आत्मा में कैवल्य (अद्वितीयत्व) कैसे है, ऐसी शङ्का होने पर उत्तर देते हैं-

अविच्छिन्न इवाज्ञानात्तन्नाशे सति केवलः।
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेऽशुमानिव।।४।।

परिपूर्ण, अद्वितीय आत्मा में अज्ञान से परिकल्पित उत्तम-अधम शरीरों के तादात्म्याध्यास से परिच्छिन्नता भासती है। अतः अविवेक से ही भेद का भान हो रहा है, तात्त्विकदृष्टि से नहीं। आत्मानात्मविवेक से अज्ञान नष्ट होने पर अद्वितीय आत्मा प्रकाशमान होता है, जैसे मेघमण्डल के हटने पर आदित्य ।।४।।

शङ्का- आत्मा में अभेदबुद्धि युक्तिसंगत नहीं हैं, वृत्त्यात्मक ज्ञान (अखण्डाकार वृत्ति) से भी आत्मा में भेद सिद्ध होता है, इस पर कहते हैं-

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्धि निर्मलम्।
कृत्वा ज्ञानं स्वयं नश्येज्जलं कतकरेणुवत्।।५।।

चिरकाल के अभ्यास से दृढ़ीभूत ज्ञान, अज्ञान नाश के द्वारा अज्ञान के कार्य अन्तःकरणादि का पूर्णरूपेण नाश करके कर्तृत्वादि आध्यासिक धर्मों का नाश करके जीव को निर्मल बनाकर अन्त में स्वयं भी नष्ट हो जाता है। वृत्ति अज्ञान का कार्य होने से, वृत्ति में प्रतिबिम्बित ज्ञान आत्माभासरूप होने से आत्मा में ही लीन हो जाता है। तब आत्मा प्रकाशित होता है। जैसे निर्मली बीज का चूर्ण (कतकरज) सम्पूर्ण जल को निर्मल बनाकर स्वयं भी नष्ट हो जाता है। ।।५।।

अपरोक्ष रूप से अनुभव में आ रहा संसार अत्यन्त

असत् (मिथ्या) कैसे हो सकता है। संसार को मिथ्या मानने पर प्रत्यक्ष प्रमाण से विरोध उपस्थित होगा। ऐसी आशंका होने पर स्वप्न-दृष्टान्त से संसार को मिथ्या सिद्ध करते हैं-

संसार स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः।
स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधे सत्यसद्भवेत्।।६।।

रागद्वेषादि से परिपूर्ण यह संसार अज्ञानदशा में सत्य के समान भासित होता है। श्रवणादि से आत्मज्ञान होने पर यह असत्य ही हो जाता है। जैसे निद्रा दोष के कारण मिथ्या स्वप्न सत्य के समान भासता है और जागरण काल में मिथ्या सिद्ध होता है, तद्वद् ।।६।।

एक अन्य दृष्टान्त से जगत् के मिथ्यात्व को दृढ़ करते हैं-

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम्।।७।।

जैसे शुक्तिगत नीलपृष्ठ, त्रिकोण आदि विषयक विशेष ज्ञान जब तक नहीं होता तब तक शुक्ति में रजतज्ञान सत्य के समान मालूम पड़ता है। ठीक उसी प्रकार सर्वाधिष्ठान, सच्चिदानन्द स्वरूप, अद्वितीय ब्रह्म का ज्ञान जब तक नहीं होता तब तक जगद्रूप से परिणत संसार भी भ्रान्ति से सत्य जैसा ही लगता है। ।।७।।

'ब्रह्म में ही सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च माया से कल्पित है' इस तथ्य का प्रतिपादन करते हैं-

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः।
व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत्।।८।।

सच्चिदानन्द, नित्य, सर्वत्र, अनुगत, व्यापक परमात्मा जो कि सबका उपादान है, उसमें देव, तिर्यक्, मनुष्य, स्थावर तथा

जङ्गम आदि सभी विशेष अभिव्यक्तियाँ, सुवर्ण में कटक, कुण्डल और मुकट आदि के समान कल्पित है। अर्थात् कल्पित की अधिष्ठानातिरिक्त सत्ता न होने से ब्रह्म से अभिन्न हैं। ।।८।।

उपर्युक्त अर्थ को आकाश दृष्टान्त से दृढ करते हैं-

यथाऽऽकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः।
तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे सति केवलः।।९।।

'हृषीकम्' इन्द्रियों को कहते हैं। अतः मनः आदि सभी इन्द्रियों के प्रेरक या नियामक परमात्मा को 'हृषीकेश' कहा जाता है। ऐसे सर्वगत परमात्मा अपनी माया से परिकल्पित नाना प्रकार की उपाधियों में प्रतिबिम्बित होकर नाना (भिन्न) के समान भासित होते हैं। किन्तु ब्रह्मैक्यज्ञान होने पर, देहादि उपाधियों के नष्ट होने पर केवल एक आत्मस्वरूप से ही परिशिष्ट होकर भासते हैं। जैसे एक ही आकाश मठ, घट आदि उपाधियों में नाना (भिन्न) के समान भासित होता है और उपाधियों के विलय होने पर एक के समान ही भासता हैं, तद्वद् ।।९।।

शङ्का- सभी देहों में तत्तद् जाति आदि से सम्बद्ध आत्मा नित्य मुक्त कैसे है? इस विषय में बताते हैं-

नानोपाधिवशादेव जातिनामाश्रमादयः।
आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत्।।१०।।

नाना उपाधि संयुक्त आत्मा में जाति, वर्ण, नाम, रूप आदि आरोपित हैं अर्थात् मायाकल्पित हैं। वास्तव में सत्य नहीं है। ठीक उसी प्रकार जैसे स्वाभाविक रूप से मधुर जल कड़वा, तीखा, मधुर, लाल और पीले आदि द्रव्यों से संयुक्त होकर वैसा ही हो जाता है, स्वरूपतः नहीं ।।१०।।

अब ज्ञानस्वरूप आत्मा की अविद्यापरिकल्पित तीन उपाधियों में से प्रथम उपाधि को कहते हैं-

पञ्चीकृतमहाभूतसम्भवं कर्मसञ्चितम् ।
शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते ।।११।।

अपञ्चीकृत पाँच भूतों में प्रत्येक को दो भाग में विभक्त करके, उनमें से प्रत्येक के आधे भाग को पुनः चार टुकड़ों में विभक्त करके, अपने अर्ध भाग को छोड़कर अन्यों के अर्ध भाग में एक-एक टुकड़े को मिला देने से पञ्चीकरण होता है। इस प्रकार से पञ्चीकृत पञ्च पृथिवी आदि स्थूल महाभूतों से उत्पन्न होने वाला तथा प्रारब्ध कर्मों से सञ्चित स्थूल शरीर प्रत्यगात्मा के सुख-दुःख भोग (अनुभव) का आयतन (भोगस्थान) कहा जाता है। ।।११।।

अब प्रत्यगात्मा के भोग साधन सूक्ष्मशरीर को बताते हैं-

पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम्।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम्।।१२।।

अञ्चीकृत पञ्च महाभूतों से उत्पन्न पञ्च प्राण, अन्तःकरण की संकल्पात्मिका वृत्ति रूपी मन, निश्चयात्मिका वृत्ति रूपी बुद्धि, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, इन सत्रह तत्त्वों से युक्त सूक्ष्म अङ्गों वाला लिङ्गशरीर प्रत्यगात्मा का भोग साधन कहा जाता है। ।।१२।।

कार्योपाधि का कथन करके अब प्रत्यगात्मा की कारणोपाधि को कहते हैं-

अनाद्यविद्याऽनिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते।
उपाधित्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत्।।१३।।

सद् असद् शब्दों से अनिर्वचनीय (कहने योग्य नहीं) अनादि अविद्या ही प्रत्यगात्मा की कारणोपाधि है। स्थूल और सूक्ष्म प्रपञ्च का कारण होने से उसे ऐसा कहा जाता है। अनृत, दुःख तथा जड़ से विलक्षण सत्, चिद् और आनन्द रूप से प्रकाशित होने से प्रत्यगात्मा कारणोपाधिवाला है। प्रति- प्रतिकूलेन अञ्चति प्रकाशते इति प्रत्यग्। प्रत्यगात्मा ही कारणोपाधिवाला है। इन तीनों ही उपाधियों के साक्षी आत्मा को उनसे विलक्षण ही जानना चाहिए ।।१३।।

शङ्का- अन्नमय आदि पाँच कोशों में तादात्म्य भाव से स्थित आत्मा को नित्य मुक्त क्यों कहा जाता है? इस विषय में कहते हैं-

पञ्चकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः।
शुद्धात्मा नीलवस्त्रादियोगेन स्फटिको यथा ।।१४।।

अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय, ये पाँच कोश हैं। इन पाँच कोशों में मिथ्या तादात्म्य करके आत्मा तत्तन्मय जैसे होकर स्थित है। जैसे शुद्ध स्फटिक नील, पीतादि वस्त्रों के सम्बन्ध से नीलादिरूप विशिष्ट भासित होता है। इसी प्रकार शुद्ध आत्मा पाँच कोशों और उनके क्षुधा-विपासा आदि धर्मों से तादात्म्य करके कोशादि से विशिष्ट जानने में आता हैं। वस्तुतः आत्मा में कोई लेप नहीं है। ।।१४।।

आत्मस्वरूप ज्ञान के लिए पञ्च कोशों से आत्मा के विवेचन का प्रकार बताते हैं-

वपुस्तुषादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्यवघाततः।
आत्मानमान्तरं शुद्धं विविच्यात्तण्डुलं यथा।।१५।।

जैसे भूसी आदि (तुषादि) युक्त चावल को अवघात (कुटाई) से पृथक् करके शुद्ध कर लिया जाता है। वैसे ही अन्नमयादि पाँच कोशो से आवृत आत्मा को युक्तियों से विविक्त करके जान लेना चाहिए। निम्नलिखित युक्तियों से (अनुमान से) आत्मा, स्थूल और सूक्ष्म शरीरों से भिन्न सिद्ध होता है।

स्थूलदेहो नात्मा कार्यभूतत्वात् घटवत्। सूक्ष्मदेहोऽपि अनात्मा देहत्वात् स्थूलदेहवत्। इस प्रकार अनुमानरूपी युक्तियों से आत्मा को पञ्च कोशों से पृथक् जान लेना चाहिए ।।१५।।

शंका- आत्मा सर्वगत है तो सर्वत्र दिखाई क्यों नहीं पड़ता? समाधन करते हैं-

सदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासते।
बुद्धावेवावभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिम्बवत्।।१६।।

आत्मा सदा ही सर्वत्र विराजमान होने पर भी जड़ बाह्येन्द्रियों के द्वारा प्रकाशित नहीं होता। रागादि से रहित बुद्धि में ही उसका प्रकाशन होता है, सर्वत्र नहीं। जैसे प्रतिबिम्ब स्वच्छ दर्पण आदि में ही दिखाई देता है, सर्वत्र नहीं। ठीक उसी तरह ।।१६।।

अब राजा के दृष्टान्त से देह में स्थित आत्मा की उदासीनता को दिखाते हैं-

देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो विलक्षणम्।
तद्वृत्तिसाक्षिणं विद्यादात्मानं राजवत्सदा।।१७।।

जड़स्वरूप परिणामस्वरूप तथा दृश्यस्वरूप देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और प्रकृति से आत्मा को विलक्षण और अन्तःकरणवृत्तियों का साक्षी जानना चाहिए। जैसे राजा अपने नगर में स्थित होकर

मन्त्री आदि को साक्षी रूप से देखता हुआ अवस्थित होता है, उसी प्रकार ।।१७।।

'आत्मा अविकारी है' यह कहना ठीक नहीं क्योंकि आत्मा सर्वदा व्यापार करता हुआ मालूम पड़ता है, ऐसी शंका का समाधान करते हैं-

व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम्।
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी।।१८।।

शास्त्र और आचार्य के उपदेश से रहित अविवेकी पुरुषों को आत्मा, इन्द्रियों के व्यापार युक्त होने पर, व्यापारविशिष्ट मालूम पड़ता है। किन्तु तत्त्वज्ञानी ऐसा नहीं देखते। जैसे वायु के थपेड़ों से मेघ मण्डल में गति होने पर लैकिक पुरुषों को चन्द्रमा भी गतिशील दिखाई पड़ता है। वास्तव में चन्द्रमा में गति नहीं होती। इसी तरह आत्मा के विषय में जानना चाहिए। ।।१८।।

शंका- देह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि भी आत्मा के समान चेतन जानने में क्यों आ रहे है? समाधान करते हैं-

आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः।
स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते सूर्यालोकं यथा जनाः।।१९।।

सत् चिद्, आनन्द स्वरूप आत्मा की चेतनता के आश्रित होकर देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त होते हैं। जैसे सभी प्राणी सूर्य प्रकाश का आश्रय लेकर लौकिक व्यवहारों का निर्वहन करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि स्वाभाविक चैतन्य आत्मा में है, देह, इन्द्रिय आदि तो जड़ है। ।।१६।।

शङ्का- 'मैं उत्पन्न हुआ हूँ' 'मैं बाल्य, कौमार और यौवन आदि अवस्थाओं का अनुभव करने वाला हूँ' 'मैं देखता हूँ'

इत्यादि प्रतीतियों से निरन्तर अनुभव में आ रहा आत्मा को अविकारी कैसे कहा जाता है? बताते हैं-

देहेन्द्रियगुणान्कर्माण्यमले सच्चिदात्मनि।
अध्यस्यन्त्यविवेकेन गगने नीलिमादिवत्।।२०।।

देह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि के धर्मों को, सत्त्वादि गुणों का और कर्मन्द्रियों के व्यापारों को अविवेक से और अत्यन्त सन्निधि रूपी दोष से मिथ्या तादात्म्य के कारण निर्मल, असंग, सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा में आरोपित किये जाते हैं। जैसे गगन में नीलिमा का भान होता है, किन्तु वह गगन का धर्म नहीं है। इसी प्रकार उत्पत्ति अवस्था आदि धर्म देहादि में हैं, आत्मा में संभव नहीं हैं। ।।२०।।

कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि धर्म आत्मा में निरन्तर अनुभव में आ रहे हैं, अतः उसका वारण नहीं किया जा सकता है। ऐसी आशङ्का होने पर उसका समाधान अगले श्लोक से करते हैं-

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि।
कल्प्यन्तेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादि यथाऽम्भसः।।२१।।

जैसे जल मे होने वाले कम्पन्न आदि धर्म अविवेक से जल में प्रतिबिम्बित चन्द्र में आरोपित किये जाते है। उसी प्रकार अन्तःकरण उपाधि के कर्तृत्व आदि धर्म अज्ञान से शुद्ध आत्मा में आरोपित किये जाते हैं ।।२१।।

नैयायिक और वैशेषिक मतावलंबी इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख आदि को आत्मा के धर्म मानते हैं। अतः उनका निराकरण अगले श्लोक में करते हैं-

रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते।

सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः।।२२।।

राग, इच्छा, सुख, दुःख, धर्म, अधर्म आदि बुद्धि के धर्म है। कैसे मालूम पड़ा ? अन्वय व्यतिरेक रूपी युक्ति से यही सिद्ध होता है। जाग्रत् और स्वप्नावस्था में बुद्धि के होने पर ही इन धर्मों का भान होता है। परन्तु सुषुप्ति अवस्था में बुद्धि के, कारण (अज्ञान) में लीन होने पर इन धर्मों का (भी) भान नहीं होता। अतः सिद्ध होता है कि इच्छादि बुद्धि के धर्म है, आत्मा के नहीं ।।२२।।

अब अगले श्लोक में आत्मा के स्वभाव का कथन करते हैं-

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता।
स्वभावः सच्चिदानन्दनित्यनिर्मलतात्मनः।।२३।।

जैसे सूर्य का स्वभाव प्रकाश, जल का शीतलता तथा अग्नि की उष्णता है। उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव सत्, चिद्, आनन्द और नित्यनिर्मलता है ।।२३।।

यदि आत्मा विकार रहित है तो मैं 'जानता हूँ' यह ज्ञान कैसे होता है, ऐसी अपेक्षा होने पर उत्तर देते हैं-

आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्तिरिति द्वयम्।
संयोज्य चाविवेकेन जानामीति प्रवर्तते।।२४।।

आत्मा का सत् चिद् अंश और बुद्धि की वृत्ति, इन दोनों को अज्ञान से मिलाकर मैं 'जानता हूँ' इस प्रकार साभास अंहकार वृत्ति प्रवृत्त होती है। असङ्ग आत्मा का किसी के साथ कोई संयोग नहीं है। वस्तुतः न तो आत्मा का सत् चिद् अंश है। न ही बुद्धि के साथ उसका संबध संभव है ।।२४।।

आत्मा में विकाराभाव को स्पष्ट करते हैं-

आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जात्विति।
जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा ज्ञाता द्रष्टेति मुह्यति।।२५।।

आत्मा स्वभाव से ही विकार शून्य है। बुद्धि में ज्ञान होने की शङ्का भी नहीं हो सकती और आत्मा में कभी विकार नहीं हो सकता। फिर भी जीव शब्द वाच्य साभास अहंकार देह, इन्द्रिय आदि में अत्यन्त अध्यास करके 'मैं ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता, द्रष्टा, पैदा हुआ तथा मरने वाला हूँ' इस प्रकार मानता है। जिस प्रकार लौहपिण्ड में अग्नि का अध्यास होता है, वैसे ही परस्पर धर्मों के अध्यास से मोहित होता है ।।२५।।

आत्मा अविवेक से अन्य के धर्मों को आरोपित करके भययुक्त होता है, इसे कहते हैं-

रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत्।
नाहं जीवः परात्मेति ज्ञातश्चेन्निर्भयो भवेत्।।२६।।

जैसे जीव रज्जु में सर्प का आरोप करके भय, कम्पन आदि से युक्त होता है। इसी प्रकार अपने सत्, चित्, आनन्द स्वरूपता को न जानकर, अपने को जीव मान करके सहस्रों सांसारिक दुःखों से पीड़ित होता है। जब शास्त्र और आचार्य के उपदेश से उत्पन्न विवेकदृष्टि से अखण्ड एकरूप आत्मा को जानता है, तब भयरहित हो जाता है। ।।२६।।

'आत्मा सबका प्रकाशक है' इसे स्पष्ट करते हैं-

आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादीनीन्द्रियाणि च।
दीपो घटादिवत्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते।।२७।।

आत्मा अकेले ही सम्पूर्ण बुद्धि आदि इन्द्रियों को प्रकाशित

करता है। किन्तु उन बुद्धि आदि से प्रकाशित नहीं होता। जैसे एक दीपक घटादि सभी संनिहित पदार्थो को प्रकाशित कर देता है, उनसे प्रकाशित नही होता, उसी तरह ।।२७।।

शङ्का - आत्मा अपने प्रकाश के लिए बुद्धि आदि की अपेक्षा रखता है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए। उत्तर देते हैं-

स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतयात्मनः।
न दीपस्यान्यदीपेच्छा यथा स्वात्मप्रकाशने।।२८।।

आत्मा ज्ञानस्वरूप होने से नित्य प्रकाशित होते रहता हैं। अपने बोध के लिए अन्य ज्ञान की अपेक्षा नहीं रखता है क्योंकि वह अनुभवस्वरूप है। जैसे दीपक अपने प्रकाशन के लिए अन्य दीपक की अपेक्षा नहीं रखता वैसे ही ।।२८।।

यदि बुद्ध्यादि से आत्मा जानने योग्य नहीं है तो आत्मज्ञान का अन्य उपाय बताना चाहिए। वह उपाय क्या है? इसे कहते हैं-

निषिध्य निखिलोपाधीन्नेति नेतीति वाक्यतः।
विन्द्यादैक्यं महावाक्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः।।२९।।

'अथात आदेशो नेति नेतीति' इन वेदान्त वाक्यों से तत्त्वं पदार्थगत सम्पूर्ण सर्वज्ञत्व, किञ्चिज्ज्ञत्व, नियन्तृत्व, नियम्यत्व आदि उपाधियों का निषेध कर देने से अर्थात् उन उपाधियों को अनात्मा जानकर निराकरण करके 'तत्त्वमसि' 'अयमात्मा ब्रह्म' 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि वाक्यों के द्वारा भागत्याग लक्षणा से जीव ब्रह्म की एकता को जानना चाहिए। यही आत्मज्ञान का सर्वोत्तम उपाय है ।।२९।।

आत्मस्वरूप को जानने में अनात्म पदार्थों का निषेध, न करने से क्या क्षति हो सकती है? वास्तव में विचार दृष्टि से देखा जाए तो अनात्म पदार्थों का निरास न करने पर आत्मा जाना ही नहीं जा सकता। जैसे 'यह सर्प है' इस प्रकार रज्जु में भ्रान्ति से आरोपित सर्प का निषेध किए बिना रज्जुज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता। इसी प्रकार अनात्म पदार्थों का निषेध करने पर ही आत्मा ज्ञातव्य है। इस आशय को अगले श्लोक से स्पष्ट करते हैं-

आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत् क्षरम्।
एतद्विलक्षणं विन्द्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम्।।३०।।

देहेन्द्रियादि सम्पूर्ण दृश्य समुदाय अविद्याका कार्य है, दृश्य होने से, पानी के बुलबुले के समान। यह विनाशी भी है। इससे विलक्षण उपाधियों के संसर्ग से रहित, निर्मल, नित्य, एक, सच्चिदानन्द ब्रह्म मैं ही हूँ, इस प्रकार अनुभव करें। ऐसा जानने से ही कृतकृत्य होगा ।।३०।।

एवं उपुर्यक्त रीति से अद्वितीय, आनन्दस्वरूप आत्मा को महावाक्यार्थ ज्ञान से अपरोक्ष रूप से जानकर, अपने अनुभव के आधार पर विशुद्ध अन्तःकरण में आत्मविषयक मनन के स्वरूप को पाँच श्लोकों से कहते हैं-

देहान्यत्वान्न मे जन्मजराकार्श्यलयादयः।
शब्दादिविषयैः सङ्गो निरिन्द्रियतया न च।।३१।।

दृश्य, जड़ आदि स्वभाव वाले स्थूल शरीर से भिन्न होने से जन्म, बुढ़ापा, कृशता (पतला होना) और लय (मृत्यु) आदि विकार मुझमें नहीं है। इन्द्रियों से सम्बन्ध न होने से मुझमें शब्दादि विषयों का सङ्ग नहीं, अत एव मुझमें विषय-भोग नहीं हैं ।।३१।।

अमनस्त्वान्न मे दुःखरागद्वेषभयादयः ।
'अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र' इत्यादिश्रुतिशासनात्।।३२।।

आत्मस्वरूप मुझमें मन का अभाव होने से दुःख, राग, द्वेष, भय आदि का अभाव है। आत्मा में इन्द्रिय, प्राण और मन का अभाव कैसे हैं ? ऐसी आशङ्का होने पर प्रमाण रूप से श्रुति को प्रस्तुत करते हैं। मुण्डकोपनिषद् की श्रुति कहती है, "अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः।" (मुण्ड २/१/२) ।।३२।।

अब अगले तीन श्लोकों से गुरु की प्रसन्नता से अनुभूत ज्ञान को प्रकट करते हैं-

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनः।
निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः।।३३।।

मैं बुद्ध्यादि का अभाव होने से निर्गुण, इन्द्रियों का अभाव होने से निष्क्रिय, अविद्या के कार्य से रहित होने से नित्य, मन का अभाव होने से निर्विल्प, अज्ञान का अभाव होने से निरञ्जन, शरीर का अभाव होने से विकाररहित, निरवयव होने से निराकार, नित्यमुक्त तथा निर्मल हूँ ।।३३।।

अब अवशिष्ट स्वरूप को अग्रिम श्लोक से कहते हैं-

अहमाकाशवत्सर्वबहिरन्तर्गतोऽच्युतः ।
सदा सर्वसमः शुद्धो निःसङ्गो निर्मलोऽचलः।।३४।।

जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त है, उसी तरह मैं सम्पूर्ण दृश्य समुदाय के बाहर-भीतर व्याप्त, किसी भी प्रकार की च्युति (स्वरूप नाश) से रहित, विषम वस्तुओं में भी समान रूप से स्थित, शुद्ध (निर्लिप्त) तथा पूर्ण होने से अचल हूँ ।।३४।।

पूर्वोक्त श्लोक वर्णित मनन का चिरकाल अभ्यास करने पर पुरुषार्थ की सिद्धि अवश्यम्भावी होती है, इसे दिखाते हैं-

एवं निरन्तराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मीति वासना।
हरत्यविद्याविक्षेपान् रोगानिव रसायनम्।।३५।।

इस प्रकार से निरन्तर 'मैं ब्रह्म हूँ' इसका अभ्यास करने से तज्जन्य दृढ़ संस्कार अविद्याकृत चित्त विक्षेपों को पूरी तरह से नाश कर देता है। जैसे चिरकालतक सेवन की गयी उपयुक्त औषधि रोग को जड़ से निकाल देती है, ठीक वैसे ही ।।३५।।

अब जीव-ब्रह्म की एकता को दृढ़ करने के लिए पुनः कथन करते हैं-

नित्यशुद्धविमुक्तैकमखण्डानन्दमद्वयम्।
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत् परब्रह्माहमेव तत्।।३६।।

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतियों में जिस नित्य, शुद्ध, विमुक्त, एक, अखण्ड, आनन्दस्वरूप, अद्वितीय परब्रह्म का कथन किया गया है, वह ब्रह्म मैं ही ह। ।।३६।।

अब ब्रह्मानुसन्धान संबन्धित कुछ अवश्य पालनीय नियमों को कहते हैं-

विविक्तदेश आसीनो विरागो विजितेन्द्रियः।
भावयेदेकमात्मानं तमनन्तमनन्यधीः ।।३७।।

स्त्री, जन आदि के विक्षेप से रहित विविक्त देश में वैराग्य और इन्द्रियनिग्रह पूर्वक स्थित होकर अनन्यचित्त से उस अनन्त आत्मा का प्रत्यग् रूप से चिन्तन करें। अर्थात् ब्रह्म में ही बुद्धि को स्थिर करे।।३७।।

दृश्य प्रपञ्च के विद्यमान रहते एकत्वभावना कैसे संभव है? इस विषय में बताते हैं-

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य धिया सुधीः।
भावयेदेकमात्मानं निर्मलाकाशवत्सदा ।।३८।।

बुद्धिमान् साधक शुद्ध बुद्धि से आत्मा में ही सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च को लीन करके अर्थात् प्रपञ्चमिथ्यात्व का दृढ़ निश्चय करके, द्वैत का अभाव होने से निर्मल आकाश के समान एक आत्मा की ही भावना करें।।३८।।

अब ज्ञानी महापुरुष की स्थिति का वर्णन करते हैं-

नामवर्णादिकं सर्वं विहाय परमार्थवित्।
परिपूर्णचिदानन्दस्वरूपेणावतिष्ठते।।३९।।

परमात्मतत्त्व ज्ञानी महापुरुष सम्पूर्ण नाम, रूप, वर्ण आदि युक्त जगत् का परित्याग करके देश काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित चिदानन्द स्वरूप से अवस्थित हो जाता है ।।३९।।

शङ्का- प्रमातृत्व आदि त्रिपुटी (प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय) का ज्ञान जब तक है, तब तक एकत्वभावना कैसे संभव है? समाधान करते हैं-

ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदः परात्मनि न विद्यते।
चिदानन्दैकरूपत्वाद्दीप्यते स्वयमेव हि।।४०।।

ज्ञातृ, ज्ञान, ज्ञेय भेद रूपी त्रिपुटी परमात्मा में बिल्कुल नहीं हैं। भेद कल्पित आत्मा में ही भासित होता है। आत्मा ज्ञान और आनन्दरूप होने से स्वयं ही प्रकाशित होता है ।।४०।।

इस प्रकार विशुद्ध आत्म वस्तु के ज्ञान से प्रत्यक्ष फल बताते हैं।

एवमात्मारणौ ध्यानमथने सततं कृते।
उदिताऽवगतिज्वाला सर्वाज्ञानेन्धनं दहेत्।।४१।।

याज्ञिक क्रियाओं के आरम्भ में दो अरणियों (अरहर आदि काष्ठनिर्मित) के मन्थन से अग्नि प्रकट की जाती है, जो डाली गयी सभी आहुतियों को जलाकर भस्म कर देती है। इसी प्रकार दार्ष्टान्त में, विशुद्ध अन्तःकरण रूपी अरणि में मन उत्तर अरणि के समान है, ध्यान के द्वारा दोनों का नित्य निरन्तर मन्थन करने पर वहाँ उत्पन्न ज्ञानाग्नि की ज्वाला, सम्पूर्ण अज्ञानरूपी ईंधन को अर्थात् कार्य के सहित मूलाज्ञान को सम्पूर्ण रूप से जलाकर भस्मसात् कर देती है। इससे तितिक्षु मुमुक्षु स्वाराज्य में अभिषिक्त होकर कृतकृत्य हो जाता है ।।४१।।

जीव-ब्रह्म के एकत्व के दृढ़ ज्ञान से, अविद्या से परिकल्पित अन्धकार के सम्पूर्ण रूप से नष्ट होने पर परमात्मा स्वयं आविर्भूत हो जाता है। इसे अगले श्लोक से कहते हैं-

अरुणेनेव बोधेन पूर्वसन्तमसे हृते।
तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव।।४२।।

जैसे सूर्योदय के पहले सूर्यप्रकाश से अन्धकार का नाश होने पर सूर्य प्रकट हो जाता है। उसी तरह ज्ञान से अज्ञानान्धकार का नाश होने पर आत्मा का आविर्भाव हो जाता है ।।४२।।

आत्मा परोक्ष स्वभाव वाला होने से सर्वदा अप्राप्त ही है। वह प्राप्त कब होगा? इसे बताते हैं-

आत्मा तु सततं प्राप्तो ह्यप्राप्यवदविद्यया।
तन्नाशे प्राप्तवद्भाति स्वकण्ठाभरणं यथा।।४३।।

सर्वत्र परिपूर्ण, अद्वितीय, आनन्दस्वरूप आत्मा सदा प्राप्त ही है। अज्ञानकृत भ्रान्ति से अप्राप्त के समान भासित होता है। जैसे कण्ठ में धारण की गयी माला, विस्मरण से अप्राप्त के समान होती है। किन्तु आप्त वाक्य सुनते ही भ्रान्ति का अपनय होते ही प्राप्त हो जाती है। ऐसे ही अज्ञानरूपी आवरण काल में अप्राप्त के समान भासित होने वाला आत्मा, महावाक्य श्रवण जन्य ज्ञान से अज्ञान नष्ट होते ही प्राप्त के समान भासित होता है। अत एव शास्त्रों में आत्म-लाभ को 'प्राप्त की ही प्राप्ति' कहा गया है ।।४३।।

शङ्का- संसारी जीव परमात्मा से अभिन्न है, यह कहना ठीक नहीं है? समाधान करते हैं-

स्थाणौ पुरुषवद्भ्रान्त्या कृता ब्रह्मणि जीवता।
जीवस्य तात्त्विके रूपे तस्मिन्दृष्टे निवर्तते।।४४।।

जैसे अन्धकार में स्थित स्थाणु आदि में कोई अनजान व्यक्ति 'यह पुरुष है' इस प्रकार की आशङ्का करके भयसंयुक्त होता है। वैसे ही अनादि काल से अविवेक से ब्रह्म में जीवत्व की कल्पना करके प्राणी तरह-तरह के अनर्थों को प्राप्त करते हैं। जब 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों से उत्पन्न विवेक दृष्टि से वह जीव अपने तात्त्विक (पारमार्थिक) स्वरूप को जान लेता है, तो कल्पित होने से जीवभाव की भी निवृत्ति हो जाती है। (तभी 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा जान सकेगा) ।।४४।।

अहंता-ममता का ज्ञान होते रहने पर एकत्त्वज्ञान कैसे संभव है? इस आशङ्का का समाधान करते हैं-

तत्त्वस्वरुपानुभवादुत्पन्नं ज्ञानमञ्जसा।
अहं ममेति चाज्ञानं बाधते दिग्भ्रमादिवत्।।४५।।

जैसे दिशाओं के सम्यग् ज्ञान से दिग्भ्रान्ति तुरंत नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार तत्त्वस्वरूप के अनुभव से अर्थात् जीव-ब्रह्म की एकता का निरन्तर अभ्यास करने से उत्पन्न दृढ़ ज्ञान सहसा 'मैं' 'मेरा' इस अज्ञान को नष्ट कर डालता है। ऐसा ही तत्त्वज्ञानियों का अनुभव देखा गया है ।।४५।।

अहंता-ममता रूपी अज्ञान के नष्ट होने पर योगी (तत्त्वज्ञानी) ज्ञाननेत्र से सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च को आत्मा में ही अभिन्न रूप से देखता है अर्थात् सम्पूर्ण प्रपञ्च को आत्मा में कल्पित जानता है। इसे कहते हैं-

सम्यग्विज्ञानवान्योगी स्वात्मन्येवाखिलं स्थितम्।
एकं च सर्वमात्मानमीक्षते ज्ञानचक्षुषा ।।४६।।

यथार्थज्ञानवान् योगी सर्वाधिष्ठानभूत आत्मा में ही ज्ञान नेत्र से सम्पूर्ण विश्व को स्थित देखता है। जैसे मिट्टी और स्वर्ण से बने पदार्थो को जानकार व्यक्ति उपादान से अभिन्न मानते हैं, वैसे ही। अथवा आत्मस्वरूप होने से मच्छर आदि सभी प्राणियों में नियन्ता रूप से विद्यमान अपने निरतिशय ऐश्वर्य को देखता है। किन्तु अपने ऐश्वर्य में तारतम्य नहीं देखता । इसके अतिरिक्त तिर्यक् आदि अधम योनियों में भी भेदक जाति, गुणादि के न होने से निरतिशय ऐश्वर्य का दर्शन कर कृतकृत्य हो जाता है ।।४६।।

शङ्का- प्रत्यक्षविरोध होने से आत्मा सर्वात्मक नहीं हो सकता। नाना रूप से दृष्टिगोचर इस जगत् को योगी आत्मा से अभिन्न रूप से कैसे देखता है? इसका समाधान करते हैं-

आत्मैवेदं जगत्सर्वमात्मनोऽन्यन्न किञ्चन।
मृदो यद्वद्घटादीनि स्वात्मानं सर्वमीक्षते।।४७।।

यह सम्पूर्ण जगत् आत्मा का कार्य होने से आत्मरूप ही है। अतः आत्मा से भिन्न कोई भी वस्तु विद्यमान नहीं है। जैसे मिट्टी के विकार घट, सकोरा, कुल्हड़ मिट्टी से भिन्न नहीं होते। अतः योगी आत्मा में सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च को कल्पित देखता है, इस विषय में शंका का कोई अवसर नहीं है। श्रुतियाँ भी कहती हैं, "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् (विकार वाणी के आलम्बन मात्र है, उपादान मिट्टी ही सत्य है।) "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् ब्रह्म ही हैं) इत्यादि ।।४७।।

ऐसा आत्मदर्शी ही जीवन्मुक्त होता है, इसे कहते हैं-

जीवन्मुक्तस्तु तद्विद्वान्पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत्।
स सच्चिदादिधर्मत्वं भेजे भ्रमरकीटवत्।।४८।।

शास्त्रों में 'कीट भ्रमर न्याय' प्रसिद्ध है। जैसे कीट क्रियान्तर का परित्याग करके सतत भ्रमर का ध्यान करते हुए उसी शरीर में भ्रमरभाव को प्राप्त होता है। उसी प्रकार मुमुक्षु साधक श्रवणदि साधनों की परिपाक दशा में अनादि अविद्या परिकल्पित स्थूल शरीरादि उपाधियों के धर्मो का परित्याग करके जीवन्मुक्त हो जाता है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म हो जाता है ।।४८।।

तदनन्तर स्वात्माराम होकर सुखपूर्वक स्थित होता है, इसे बताते हैं-

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषादिराक्षसान्।
योगी शान्तिसमायुक्तो ह्यात्मारामो विराजते।।४९।।

अपरिमित मोह रूपी समुद्र को ज्ञानरूपीनौका से पार करके, मोक्ष के विरोधि राग, द्वेष आदि राक्षसों को मार करके शम दम आदि से विशिष्ट ज्ञानी जीवन्मुक्त पुरुष आत्मा में ही रमण करते हुए स्वराज्य में अभिषिक्त होकर विराजमान होता है।।४६।।

अब जीवन्मुक्त का लक्षण बताते हैं-

बाह्यानित्यसुखासक्तिं हित्वाऽऽत्मसुखनिर्वृतः।
घटस्थदीपवच्छश्वदन्तरेव प्रकाशते ।।५०।।

बाह्येन्द्रियों का विषयों के सम्बन्ध से जन्य अनित्य सुख की आसक्ति का परित्याग करके, आत्मसुखरूप से संपन्न, स्वसाक्षी रूप से आत्मानुभव करने वाला ही जीवन्मुक्त कहलाता है। जैसे घट के भीतर रखा हुआ दीपक भीतर-ही-भीतर प्रकाशित होता रहता है। उसी प्रकार जीवन्मुक्त पुरुष आत्मसुख का अनुभव नित्य करना है। किन्तु अन्यों के द्वारा नहीं जाना जाता ।।५०।।

इस प्रकार कहा गया जीवन्मुक्त पुरुष प्रारब्धक्षय होने तक स्थित रहता है। इसे अगले श्लोक से स्पष्ट करते हैं-

उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैर्न लिप्तो व्योमवन्मुनिः।
सर्वविन्मूढवत्तिष्ठेदसक्तो वायुवच्चरेत्।।५१।।

मननशील जीवन्मुक्त पुरुष देहादि उपाधियों के साक्षीरूप से होने पर भी आकाश के समान उपाधि के धर्मों से लिप्त नहीं होता। सर्वज्ञ होने पर भी प्राकृत (अज्ञानी) मनुष्यों के समान स्थित

होता है। स्वाभाविक रूप से विषयों की प्राप्ति होने पर भी आसक्ति से रहित होकर वायु के समान विचरण करता है ।।५१।।

प्रारब्ध के क्षीण होने पर देहद्वय रूपी उपाधि के लीन होने पर कैवल्य (विदेहमुक्ति) को प्राप्त कर लेता है। इसे अग्रिम श्लोक से बताते हैं-

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं विशेन्मुनिः।
जले जलं वियद्व्योम्नि तेजस्तेजसि वा यथा।।५२।।

जैसे जल में जल, आकाश में आकाश और तेज में तेज मिलकर एकाकारता को प्राप्त कर लेता है। उसी प्रकार प्रारब्ध समाप्त होने पर दोनों शरीर नष्ट होते ही तत्त्वज्ञानी मुनि सर्वव्यापक परब्रह्म परमात्मा में निर्विशेष को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् अत्यन्त अभिन्न हो जाता है ।।५२।।

अब तटस्थ लक्षण के द्वारा ब्रह्म जीव से अभिन्न है, इसे दिखाते हैं-

यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम्।
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्।।५३।।

जिस ब्रह्म साक्षात्कार रूपी लाभ से बढ़कर कोई लाभ कहीं भी विद्यमान नहीं है। क्योंकि सभी सांसारिक लाभों का अन्तर्भाव ब्रह्मलाभ में ही हो जाता है। ब्रह्मानन्द में ही सभी सांसारिक आनन्दों का अन्तर्धान (अन्तर्भाव) हो जाता है। जिस ब्रह्म सुख से बढ़कर कोई भी सांसारिक सुख नहीं है। क्योंकि ब्रह्म सुख निरतिशय सुख है। जिसके साक्षात्कार से अन्य कोई ज्ञान अवशिष्ट नहीं रहता। वही ब्रह्म है, ऐसा निश्चय कर लेना चाहिए ब्रह्म ज्ञान से ही मोक्ष ही प्राप्ति होती है। अन्य ज्ञान से नहीं ।।५३।।

यद्दृष्ट्वा न परं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः।
यज्ज्ञात्वा न परं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्।।५४।।

जिसको देख लेने पर अन्य कोई दृश्य शेष नहीं रह जाता, वह ब्रह्म है। क्योंकि उसी में सम्पूर्ण पुरुषार्थों की सिद्धि हो जाती है। जिसकी स्वरूपता को प्राप्त कर लेने पर पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता है। वही ब्रह्म है। जिसके जान लेने पर अन्य कोई ज्ञेय नहीं रह जाता, वही ब्रह्म है। ऐसा निश्चय कर लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त सभी तो वृथा पाण्डित्य ही है ।।५४।।

अब दो श्लोकों से ब्रह्म का स्वरूप लक्षण कहते हैं-

तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानन्दमद्वयम्।
अनन्तं नित्यमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्।।५५।।

जो बायें-दाहिने, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे सर्वत्र पूर्ण, सच्चिदानन्द स्वरूप, अद्वितीय, त्रिविध परिच्छेद रहित, नित्य तथा एक ही है, वही ब्रह्म है। ऐसा निश्चय कर लेना चाहिए ।।५५।।

अतद्व्यावृत्तिभेदैस्तु वेदान्तैर्लक्ष्यतेऽव्ययम्।
अखण्डानन्दमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्।।५६।।

वेदान्त वाक्यों से अनात्म पदार्थों की व्यावृत्ति के द्वारा जो अव्यय, अखण्ड, आनन्दस्वरूप, एक तत्त्व लक्षित होता है, वही ब्रह्म है। ऐसा निश्चय कर लेना चाहिए ।।५६।।

शङ्का- ब्रह्मा आदि भी निरतिशय आनन्द वाले सुने गये हैं? समाधान करते हैं-

अखण्डानन्दरूपस्य तस्यानन्दलवाश्रिताः।
ब्रह्माद्यास्तारतम्येन भवन्त्यानन्दिनोऽखिलाः।।५७।।

परब्रह्म परमात्मा अखण्ड आनन्द स्वरूप है। उस आनन्द समुद्र की जरा सी मात्रा का आश्रय लेकर ब्रह्मा आदि सभी जीव आनन्द के तारतम्य से आनन्दित होते हैं। अतः श्रुति कहती है, "एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति।" इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मा आदि का आनन्द परिच्छिन्न है ।।५७।।

आत्मा ही परम प्रेमास्पद होने से सभी की अपेक्षा प्रियतम होता है, इसे बताते हैं-

तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारस्त्वतिप्रियः।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले।।५८।।

उस आनन्दस्वरूप आत्मा से सम्बद्ध सभी देहादि वस्तुएँ प्रियतम हो जाती है। आत्मसंयुक्त व्यवहार भी अत्यन्त प्रिय ही होता है। इसीलिए सम्पूर्ण दूध में व्याप्त घृत के समान सर्वगत अत्यन्त प्रिय ब्रह्म ही सबका प्रिय आत्मा है ।।५८।।

तब आत्मा को किस प्रकार से सबको व्याप्त करके स्थित हुआ जाने? ऐसी आशङ्का होने पर कहते हैं कि साक्षाद् कथन संभव न होने पर भी सत्ता रूप से उसी का भान हो रहा है। अतः 'अनण्वस्थलूम्.........' इस श्रुति के आधार पर समाधान करते हैं-

अनण्वस्थूलमह्रस्वमदीर्घमजमव्ययम्।
अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्।।५९।।

जो अणु भी नहीं, स्थूल नहीं, ह्रस्व नहीं, दीर्घ नहीं, अजन्मा, अविनाशी तथा रूप-गुण वर्ण और नाम से रहित है, वही ब्रह्म है। ऐसा निश्चय कर लेना चाहिए ।।५६।।

पुनः ज्ञान के लिए तीन श्लोकों से ब्रह्म का निरूपण करते हैं-

यद्भासा भासतेऽर्कादिर्भास्यैर्यत्तु न भास्यते।
येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत्।।६०।।

जिस प्रकाशस्वरूप के प्रकाश से सूर्यादि प्रकाशित होते हैं। परन्तु प्रकाश्य सूर्यादि के द्वारा जो प्रकाशित नहीं होता। जिसके द्वारा सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है। वही ब्रह्म है, ऐसा निश्चय कर लेना चाहिए। कठोपनिषद्-श्रुति कहती है "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।" (कठ. २/२/१५) (उस आत्मस्वरूप ब्रह्म का प्रकाशन सर्वप्रकाशक सूर्य भी नहीं कर सकता। इसी प्रकार चन्द्रमा, तारे और विद्युत् भी उस का प्रकाश नहीं कर पाती। उस चैतन्यज्योति आत्मा के प्रकाशित होने पर ही सब प्रकाशित होता है। उसके प्रकाश से ही सब कुछ भासता है) ।।६०।।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी इसी तथ्य का कथन शब्दान्तर से किया गया है। उसे कहते हैं-

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।६१।।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से बताते हैं कि मेरे उस तेजस्वरूप परम पद को न सूर्य प्रकाशित कर पाता है, न चन्द्रमा और न ही अग्नि। जिस वैष्णव (व्यापक) पद को प्राप्त होकर प्राणी वापस नहीं लौटते, वहीं मेरा परम धाम है ।।६१।।

पुनः अग्रिम श्लोक से उसी अर्थ को कहते हैं-

स्वयमन्तर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखिलं जगत्।

ब्रह्म प्रकाशते वह्निप्रतप्तायसपिण्डवत्।।६२।।

सर्वस्वरूपभूत ब्रह्म सम्पूर्ण जगत् के भीतर-बाहर व्याप्त होकर प्रकाशित करता हुआ स्वयं प्रकाशित हो रहा है। जैसे तपे हुए लोह के गोले में स्थित अग्नि, गोले को सम्पूर्ण रूप से व्याप्त होकर प्रकाशित करते हुए स्वयं भी प्रकाशित होती है, ठीक वैसे ही ।।६२।।

पुनः स्वरूपभूत ब्रह्म का कथन करते हैं-

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यन्न किञ्चन।
ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका।।६३।।

ब्रह्म जगत् से विलक्षण है क्योंकि वह जगत् का अधिष्ठान है। किन्तु अन्य सभी वस्तुएँ ब्रह्म में ही अध्यस्त होने से ब्रह्म से भिन्न नहीं है। ब्रह्म से भिन्न यदि कुछ भी दिखाई पड़ता है, तो उसे मरुमरीचिका के जल के समान मिथ्या ही जानना चाहिए ।।६३।।

पुनः उसी तथ्य का प्रतिपादन करते हैं-

दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोऽन्यन्न तद्भवेत्।
तत्त्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।।६४।।

चक्षु से जो कुछ भी दिखाई पड़ता है, श्रोत्र से जो कुछ भी सुनाई पड़ता है, मन से जो कुछ भी स्मरण किया जाता है, वाणी से जो भी बोला जाता है, तात्त्विक दृष्टि से सब ब्रह्म ही है। श्रुतियों में भी कहा गया है-

"न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः।।"

(मुण्डक. ३/१/८)

यह आत्मा चक्षु, वाणी, अन्य इन्द्रियाँ, तप, कर्म आदि से गृहीत नहीं होता। रागादि मल से रहित ज्ञान के प्रसाद से शुद्ध अन्तःकरण वाला पुरुष ही ध्यान से उस निष्कल आत्मा का साक्षात्कार कर पाता है ।।६४।।

शङ्का - यदि ब्रह्म सर्वगत है तो सभी को दिखाई क्यों नहीं पड़ता? समाधान करते हैं-

सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते।
अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वन्तं भानुमन्धवत्।।६५।।

अज्ञान नेत्र से विशिष्ट पुरुष सर्व व्याप्त, सच्चिदानन्द अद्वितीय ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर पाता। श्रुतियाँ कहती है, "न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।"-कोई भी इस आत्मा को चर्म-चक्षु से नहीं देख सकता। "तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ।"- दृष्टादृष्ट विषयों से निष्काम पुरुष ही मन आदि इन्द्रियों की प्रसन्नता से जब अपनी आत्मा की महिमा को जान लेता है तो वह शोकरहित हो जाता है। अतः श्रुतियों से सिद्ध होता है कि विवेकी पुरुष ही आत्मा का साक्षात्कार कर सकता है। इसे दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं। जैसे कोई अन्धा व्यक्ति प्रकाशमान सूर्य को भी नहीं देख पाता। उसी प्रकार अविवेकी पुरुष आत्मा को नहीं जान पाता ।।६५।।

एवं उपर्युक्त रीति से, अभ्यास से रहित अनुभव संपन्न पुरुष को अनादिकालीन वासनाओं से अज्ञान संभव है। उसका परिहार करने के लिये बार-बार श्रवणादि की आवृत्ति करनी चाहिए। इसे बताते हैं-

श्रवणादिभिरुद्दीप्तो ज्ञानाग्निपरितापितः।

जीवः सर्वमलान्मुक्तः स्वर्णवद्द्योतते स्वयम्।।६६।।

जीव शब्द वाच्य साभास अहंकार यहां श्रवण मनन आदि से प्रकाशित होकर, ज्ञानरूपी अग्नि से शोधित किए जाने पर सभी अज्ञानात्मक मल से मुक्त होकर स्वयं ही सम्यक् रूप से प्रकाशित होता है। जैसे स्वर्ण को अग्नि में तपाये जाने पर वह अशुद्धियों को छोड़कर स्वरूपतः प्रकाशित होता है। ठीक वैसे ही ।।६६।।

इस प्रकार शोधित होकर परमात्मस्वरूप जीव हृदयाकाश में स्थित अज्ञानान्धकार का उपसंहार करके सूर्य के समान प्रकाशित होता है। अब इसे बताते हैं-

हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभानुस्तमोऽपहृत्।
सर्वव्यापी सर्वधारी भाति भासयतेऽखिलम्।।६७।।

जैसे आकाश में उदित हुआ सूर्य अन्धकार का नाश करके प्रकाशित होता है। वैसे ही हृदयाकाश में उदित हुआ बोधात्मक सूर्य सर्वव्यापक, सर्वाधार, सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करके सम्पूर्ण प्रपञ्च को प्रकाशित करता है। 'सर्वात्मक ब्रह्म मैं ही हूँ, इस प्रकार सर्वात्मक रूप से प्रकाशित होता है।' श्रुतियाँ भी कहती हैं, ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' (सम्पूर्ण दृश्यमान प्रपञ्च निश्चित रूप से ब्रह्म ही है।) इत्यादि ।।६७।।

शङ्का- आत्मज्ञानी को परमात्मज्ञान के प्रतिबन्धक पापों का नाश करने के लिए नाना प्रकार के पदार्थों से याग करना चाहिए? समाधान करते हैं-

दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं
शीतादिहृन्नित्यसुखं निरञ्जनम्।
यः स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियः

स सर्ववित्सर्वगतोऽमृतो भवेत्।।६८।।

।।इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमच्छङ्कर-भगवत्पादाचार्यविरचित आत्मबोधः।।

जो निष्क्रिय परमहंस महापुरुष आत्मरूपी तीर्थ में अवगाहन कर लेता है, वह सर्वज्ञ, सर्वगत विद्वान् परमात्मस्वरूप होने से अमृत हो जाता है। अर्थात् मुक्त हो जाता है। वह आत्मतीर्थ कैसा है? ऐसी आशंका होने पर बताते हैं- जो देश, काल आदि की अपेक्षा न रखकर सर्व व्यापक, शीत-उष्ण आदि दुःखों को हरने वाला परमानन्द का हेतु होने से नित्यसुखस्वरूप, माया के लेप से रहित होने से निरञ्जन है, ऐसे आत्मतीर्थ में ही परमहंस रमण करते हैं। इतर तीर्थ आत्मतीर्थ से विपरीत हैं। अतः आत्मतीर्थ में रमण करने वाले ज्ञानी को कोई भी कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता ।।६८।।

(इस प्रकार परमहंस परिव्राजकाचार्य कैलास पीठाधीश्वर आचार्य महामण्डलेश्वर श्रीमत्स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती द्वारा रचित आत्मबोध व्याख्या समाप्त हुई।)

[illegible]